श्रीमद्–वल्लभाचार्य–महाप्रभु–विरचित–षोडश–ग्रन्थान्तर्गतं–नवमं

कृष्णाश्रयस्तोत्रम्

षड्भिष्टीकाभिः समलंकृतम्

१. श्रीरघुनाथानां विवरणम्

२. श्रीकल्याणरायाणां प्रकाशः

३. त्रिगृहश्रीगोविन्दराजभट्टानां प्रकाशटिप्पणम्

४. श्रीद्वारिकेश्वराणां विवृतिः

५. श्रीव्रजराजानां विवरणम्

६. केषाञ्चित् विवरणम्

श्रीमद्–वल्लभाचार्य–महाप्रभु–प्रवर्तित–शुद्धाद्वैत–सम्प्रदायस्य–सप्त–
पीठान्तर्गत–षष्ठ–पीठाधिष्ठित–गोस्वामि श्री १००८ श्री
श्रीव्रजरत्नलालजी — महाराजश्रीत्येतैः प्रकाशितम्

वि. सं. २०३६

श्रीवल्लभाब्दाः ५०३

प्रकाशक :

गोस्वामिश्री १००८ श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज (षष्ठपीठाधीश्वर)
मोटुं मन्दिर, भागातलाव, सूरत, ३९५००३. भारत.

साधारण संस्करण २००० प्रति

राज संस्करण १००० प्रति

श्रीवल्लभाब्दः ५०३

ग्रन्थ-परिचय लेखक: गोस्वामी श्याम मनोहर

मुद्रक:

स्टूडिओ बहार, २३ ए, सेन्ट्रल चौपाटी बिल्डिंग, चौपाटी,
मुम्बई-४०००००७.

गोस्वामिश्री १००८ श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज

।। श्रीकृष्णाय नमः ।।

।। श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।।

ग्रन्थ--परिचय

कृष्णाश्रयस्तोत्रका प्रणयन अड़ैलमें श्रीमहाप्रभुने लाहोरके बूला मिश्रके लिए किया था. यह उल्लेख चौरासी वैष्णवनकी ४६वीं वार्ताके भावप्रकाशमें मिलता है. इसका रचनाकाल वि. सं १५७० कहा जाता है.[१]

बूला मिश्रका जन्म सारस्वत ब्राह्मणके घरमें हुआ था. बूलाके पिता पुरोहिताईका काम करते थे – परन्तु और किसी तरह पढे-लिखे नहीं थे. बूला जब दस वर्षके हुए तो पिताने बुला कर कहा—"बेटा ! तुम ब्राह्मणकुलमें जनमे हो. कुछ थोडा-बहुत शास्त्रोंका अध्ययन करोगे तो सम्मानपूर्ण जीवन जी पाओगे. अन्यथा मेरी तरह अनपढ़ ही रह जाओगे."

पिताने जिस पण्डितजीके पास अपने पुत्रको विद्योपार्जनके लिए भेजा वह पूरा 'लाभपूजापरायण' पण्डित था. चेला पटते देखकर बोला-- "अच्छी तरह पढ़ना हो तो पहले पांच-दस रूपया भेंटके रूपमें लाकर मेरी पूजा-भक्ति करो !" (पांच--दस रुपया आजसे पांच सौ वर्ष पूर्व बहुत महंगा था).

बूला मिश्र घबरा गये. भागकर घर आ गये. भोहें तानकर पिताने पूछा-- "क्यों लोटकर घर आगये न ? अरे, यहां घरमें पडे रहे तो ओरतोंका काम चूल्हा फूंकना ही सिर्फ सीख पाओगे. क्यों गुरूजीके घरमें रहनेमें क्या लज्जा आती है?" बूला बोले—"अरे, यह पण्डितजी तो पढानेसे पहले ही गुरुदक्षिणा मांग रहे हैं! और यहां तो किसीके भी पास जाऊं, गति यही होगी. सो मैं तो काशी जाऊंगा पढ़ने." बूलाके पिताजीने ताना कसा– "घरके बाहर निकलनेकी हिम्मत है नहीं और बेटा काशी पढ़ने जायेगा! "

ठेस लग गयी इस बातसे बूलाके मनपर. बूलाने अपने पिताजीके पैर छुए और घरसे बाहर निकल गये. भीख मांगकर पेट भरते हुए किसी तरह काशी पहुंचे. वहां भी भिक्षावृत्तिके अलावा कोई चारा न था पर एक पण्डितजीने पढ़ानेकी दयालुता बूलाको दिखलाई. बूलाके कठोर परिश्रमके बावजूद भी तीन वर्षकी अवधिमें कोई विशेष विद्यार्जन हो नहीं पाया. दोनों ही निराश

---

१. श्रीनागरदास बांभणिया–लिखित लेख, वैष्णववाणी अंक ४ वर्ष १९७९.

हो गये, अध्यापक भी और विद्यार्थी भी. एक रोज पण्डितजीने साफ-साफ कह ही दिया—"बूला ! तुम्हारे भाग्यमें सरस्वती नहीं है. व्यर्थ परिश्रम क्यों करते हो ?"

बेचारे बूला मिश्र खिन्न हो गये. पण्डितजीकी पाठशालासे निकलकर शहरके बाहर गंगाके तटपर अन्न-जलका त्यागकर बैठ गये. ब्राह्मणोचित महत्त्वाकांक्षाको लिये हुए एक ब्राह्मणबालक काशीमें तीन वर्षतक रहकर भी विद्यार्जन न कर पाये तो दूसरा मार्ग और क्या हो सकता था? बूलाने सोचा कि या तो इस तपस्यासे सरस्वती प्रसन्न होगी, नहीं तो फिर इसी तरह प्राण-त्याग देना उचित है. तीन दिन बाद सरस्वतीकी वाणी सुनायी दी कि सब कुछ भगवदिच्छाके अनुसार होता है. भगवदिच्छा होनेपर-चाण्डाल भी विद्वान् हो सकता है और भगवदिच्छा न होनेपर ब्राह्मण भी मूर्ख ही रह जाते हैं.

"विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति"
"प्राकृताः सकलाः देवाः गणितानन्दकं बृहत्,
पूर्णानन्दो हरिस्तस्मात्कृष्ण एव गतिर्मम."

बूला मिश्रके भीतर विवेक तो जागा परन्तु धैर्य छूट गया. बुलाने सोचा कि यदि सब कुछ भगवदिच्छाके अनुसार ही होता हो तो भगवान्की इच्छाको बदलनेके लिए भगवान्के नामपर ही भूखहड़ताल करनी चाहिये ! ऐसा विचारकर बूला "विष्णु-विष्णु-विष्णु" जप करते हुए भूखे प्यासे बैठे रहे. अधीर होकर ही सही पर भगवन्नाम लेनेपर बूला मिश्रको भगवत्साक्षात्कार हुआ और श्रीमहाप्रभुके पास अड़ैल जानेकी भगवदाज्ञा भी हुई. बूला मिश्र भगवदाज्ञा पाकर अड़ैल पहुंचे. श्रीमहाप्रभुने इनका स्वागत किया और कहा "बूला ! तुम धन्य हो. तुमने भगवद्दर्शन पाये !" बूला मिश्रने सविनय निवेदन किया—"महाराज ! भगवत्साक्षात्कार आपकी कृपाका फल है. परन्तु भगवद्दर्शन होनेके बावजूद भगवत्स्वरूपानन्दका अनुभव मुझे नहीं हुआ !" श्रीमहाप्रभुने समझाना चाहा—"एकबार भी भगवत्साक्षात्कार हो जानेपर सांसारिक मोहके बन्धनका भय नहीं रह जाता, जीव मुक्त हो जाता है." इसपर बूला मिश्रने विनंती की—"महाराज! मुझे मुक्ति नहीं चाहिये—भक्ति चाहिये. अतः कृपाकर आप अपनी शरणमें मुझे लें!"

श्रीमहाप्रभुने प्रसन्न होकर बूला मिश्रको यमुनाजीमें स्नान करनेकी आज्ञा दी और पश्चात् अष्टाक्षर तथा ब्रह्मसम्बन्ध का दान दिया. समग्र शास्त्रोंके गुह्यतम रहस्यके उपदेश तथा मानसीसेवोपयोगी मनकी सिद्धि के लिए श्रीमहाप्रभुने कृष्णाश्रयस्तोत्रकी रचना की और उसे बूला मिश्रको पढाया.

'आश्रय' शब्दके दो अर्थ होते हैं: १) सहारा देनेवाला २) सहारा लेनेकी क्रिया. अतएव विवेकधैर्याश्रय ग्रन्थमें जब—"श्रीहरिके आश्रयसे सारे अशक्य कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं (अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेद्)" कहा तो वहां 'आश्रय' का अर्थ शरणागति या सहारा लेनेकी क्रिया है. इसी तरह भागवतके द्वितीयस्कन्धके -- "जगत्के उत्पत्ति एवम् प्रलय के कर्ता तथा उपादान रूप परब्रह्मको 'आश्रय' कहा जाता है (आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते)" इस वचनमें 'आश्रय' शब्द आधार या सहारा बननेवालेके अर्थमें प्रयुक्त हुआ हैं. 'आश्रय' शब्दके इन दोनों अर्थोंको लेकर ही "कृष्ण एव गतिर्मम" मे 'गति' शब्द प्रयुक्त हुआ है. अर्थात् भगवान् ही साधन हैं और भगवान् ही फल भी –भगवान् ही मार्ग हैं और गन्तव्य भी— भगवान् श्रीकृष्ण सभी अर्थोंमें हमारे आधार –आश्रय–गति हैं. अतएव "कृष्ण एव गतिर्मम" का अर्थ – कृष्ण ही हमारे आश्रय हैं और कृष्णका ही हमें आश्रय लेना चाहिये—दोनों तरहसे लिया जा सकता है.

इस जगत्में अनेक प्रकारकी जीवात्मायें हैं. कुछ जीवत्माओंमें लौकिक फलोंकी प्राप्तिके लिए लौकिक साधनोंके आश्रयकी वृत्ति प्रबल होती है. प्रवाही जीवात्माओंका यह प्रमुख स्वभाव होता है. कुछ जीवात्माओमें वेदादि—शास्त्रीय फलोंकी प्राप्तिके लिए केवल शास्त्रीय साधनोंके ही आश्रयकी वृत्ति प्रबल होती है. मर्यादामार्गके अन्तर्गत कर्ममार्गीय जीवोंमें यह स्वभाव बलवान् होता है. कुछ वैदिक फलोंकी प्राप्तिके लिए वैदिक साधनोंके साथ-साथ भगवान्को भी आश्रयके रूपमें अपनाते हैं. मर्यादामार्गके अन्तर्गत ज्ञानमार्गीय उपासनामार्गीय तथा मर्यादाभक्तिमार्गीय साधकोमें यह स्वभाव पाया जाता है. कुछ जीवात्माओंको भगवान्के अलावा अन्य किसी फलकी कामना होती नहीं है. अतः वे साधनके रूपमें भी केवल हरिका आश्रय स्वीकारते हैं. ऐसे जीवोंको पुष्टिजीव समझना चाहिये (दृष्टव्य भागवतार्थ–निबन्ध ५-६/१२). अतएव "कृष्ण एव गतिर्मम" मनोभाव पुष्टिजीवका परम लक्षण है.

भागवतके बारहवें स्कन्धका वर्ण्य-विषय भी आश्रयलीला ही है. भागवतार्थ-निबन्धमें 'आश्रय' शब्दके अनेक अर्थ दिखलाये गये हैं.

यथा–भागवतके द्वितीय स्कन्धसे लेकर ग्यारहवें स्कन्धतक भगवान्की जिन सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वन्तर ईशानुकथा निरोध और मुक्ति रूप लीलाओंका वर्णन किया गया है, उन लीलाओंके कर्ता-आश्रय एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं. ये नवविध लीलायें लक्षण हैं और इनसे लक्षित लक्ष्य-आश्रय एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं. इन नवविध लीलाओंका वर्णन भागवतकारने इसी हेतुसे किया है कि जिन-जिन विभूतिरूपोंको धारण कर सर्गलीलासे लेकर ईशानुकथातक की लीलायें भगवान् करते हैं उन सभी रूपोंके साथ भगवान्का कार्य-कारणरूप शुद्धाद्वैतरूप सम्बन्ध है. अर्थात् एक ही ब्रह्मका नाम-रूपमें विस्तार यह समग्र ब्रह्माण्ड है (सर्वं खलु इदं ब्रह्म). कार्यरूप सभी लौकिक या अलौकिक विभूतिनामों तथा विभूतिरूपों को धारण करनेवाला कारण-रूप परमात्मा एक ही है, ऐसा शुद्धाद्वैत-बुद्धिसे समझना आवश्यक है. हृदयसे स्नेह या आश्रय किन्तु विभूतिनाम अथवा विभूतिरूप का नहीं प्रत्युत मूल-रूप श्रीकृष्णके ही नाम-रूपका होना चाहिये (ब्रह्मरूपं जगत् ज्ञातव्यं ब्रह्म जगतोतिरिच्यते इति न तत्रासक्तिः कर्तव्या). अतः प्रथमस्कन्धसे लेकर नवम स्कन्धतक वर्णित लीलायें अन्याश्रय छुडानेके लिए हैं तथा दशम स्कन्धसे लेकर द्वादश स्कन्धतक की लीलायें कृष्णाश्रयके दृढीकरणार्थ हैं. हमने कह दिया है कि द्वादश स्कन्धका मुख्य वर्ण्य-विषय आश्रयलीला है. भागवतार्थ निबन्धके द्वादशस्कन्धार्थ-प्रकरणमें श्रीमहाप्रभु कहते हैं– "कृष्ण एवाश्रयो मतः" यही वाक्य इस कृष्णाश्रयस्तोत्रमें "कृष्ण एव गतिर्मम" के रूपमें रखा गया हैं.

एवकार इतरव्यावर्तक माना जाता हैं. श्रीकृष्णके मूलरूपके अलावा अन्य सारे विभूतिरूप–लौकिक हों या अलौकिक–जड हों या चेतन–देव दानव मानव पशु पक्षी इत्यादि सभी रूपोंको भक्तिमार्गीय एवम् प्रपत्तिमार्गीय आश्रयके दृष्टिकोणसे इतर माना जाता है. ज्ञानमार्गीय दृष्टिकोणसे शुद्धाद्वैत-वादके अनुसार ये सर्वथा अभिन्न ही हैं परन्तु इस अभेदबुद्धिसे ये विभूतिरूप आश्रयणीय नहीं किन्तु केवल ज्ञातव्य हैं अतएव सभी विभूतिरूप एवकार-द्वारा व्यावर्तनीय माने जाते हैं. इस "कृष्ण एव गतिर्मम" के एवकारकी ही व्याख्या श्रीमहाप्रभुने– "अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च, प्रार्थना कार्य-मात्रेपि ततोन्यत्र विवर्जयेत्." इस विवेकधैर्याश्रयकी कारिकामें दी हैं.

अन्याश्रय-रहित केवल श्रीकृष्णका आश्रय ही उचित है, यह दिखलाने के लिए अन्योंके आश्रयकी विफलताका बोध आवश्यक है. तदनुसार इस स्तोत्र-के प्रथम तीन श्लोकोंमें लोकाश्रयकी विफलताका निरूपण किया गया है तथा द्वितीय तीन श्लोकोंमें धर्माश्रयकी विफलताका. तृतीय तीन श्लोकोंमें कृष्णाश्रयकी महत्ताका निरूपण क्रमशः कर्ममार्गीय ज्ञानमार्गीय तथा भक्ति-मार्गीय दृष्टिकोणसे किया गया है. अन्तिम दो श्लोकोंमें पृथक्शरण-मार्ग अथवा प्रपत्तिमार्गके उपदेशद्वारा गीताकी तरह श्रीमहाप्रभुने भी सम्पूर्ण निर्भयताका वरदान दिया है.

एक अन्य रीतिसे प्रारम्भके छह श्लोकोंमें काल देश द्रव्य कर्ता मन्त्र तथा कर्म जो धर्मके आवश्यक छह अंग हैं, उनकी विफलता दिखलाते हुए, द्वादश स्कन्धके वर्ण्य-विषय पञ्चविध आश्रय – कृष्णाश्रय जगदाश्रय वेदाश्रय भक्ति-आश्रय तथा भागवताश्रय–के अनुरूप पांच श्लोकोंमें भगवदाश्रयकी महत्ताका निरूपण किया गया है.

एक तृतीय रीतिसे देखनेपर प्रारम्भके नौ श्लोकोंमें नवविध लीलार्थ गृहीत विभूतिरूपोंका अन्याश्रय छुडानेके लिए नौ श्लोकोंमें—"कृष्ण एव गति-र्मम" कहकर इताराश्रयका वारण किया है तथा दसवें श्लोकमें कृष्णाश्रयको सुदृढ किया गया है. ग्यारहवें श्लोकमें इस कृष्णाश्रयस्तोत्रकी फलश्रुति कही गयी है.

इस एक ही स्तोत्रमें वाक्पति श्रीमहाप्रभुने अनेक विवक्षाओंसे अनेकधा कृष्णाश्रयका निरूपण बूला मिश्रको समझाया है.

१) कलियुगके कारण धर्मनिष्ठानमें भी या तो आंतरिक दुराशयकी प्रचुरता ही सर्वत्र दिखलायी देती है, या फिर ईश्वर-भजन-विरोधी उपधर्मों अनीश्वरवादी ज्ञान वैराग्य अहिंसा दया लोकोपकार इत्यादि – के पाषण्डका ही प्रचुर प्रचार दिखलायी देता है. इससे भगवत्प्राप्तिके कर्म ज्ञान और भक्ति मार्ग अवरुद्ध हो गयें हैं. तथापि जिन्हें साधन और फलके रूपमें एक-मात्र श्रीकृष्णका ही आश्रय है उन्हें किसी तरहका भय नहीं रह जाता. अतः इस कलियुगमें एकमात्र श्रीकृष्ण ही गति हैं.

२) सारा देश तामसी म्लेच्छ शक्तियोंसे आक्रान्त हो गया है. लोभ-लालच कामुकता-व्यभिचार लूट-खसोट हिंसा-अत्याचार जैसे पापोंके अनैतिक अड्डे ही सर्वत्र चल निकले हैं. स्वधर्म-पालनका जो थोडा-बहुत प्रयास करते भी हैं उन्हें अनेकविध पीडा और क्लेशों से सन्त्रस्त किया जाता है. ऐसी स्थितिमें सज्जनोंका व्यग्र हो जाना स्वाभाविक बात है. ऐसी स्थितिका सामना करनेके लिए केवल श्रीकृष्ण ही हमारे सम्बल हो सकते हैं.

३) सभी पवित्रस्थल मन्दिर आश्रम वन पर्वत सरोवर गंगा आदि तीर्थ, धनलोलुप तथा दुष्कर्म-निरत धर्मध्वजी उपदेशक पण्डा पुजारी पुरोहितों से घिर गये हैं. अतः इन पवित्र स्थलोंका जैसा आधिदैविक प्रभाव प्रकट होना चाहिये वह दिखलायी नहीं देता. परन्तु जिन भक्तोंमें श्रीकृष्णकी लालसा है उनकी कभी दुर्गति नहीं होगी.

४) कर्ता धर्मका चतुर्थ अंग माना जाता है. वर्तमान युगमें धर्म-भावनासे धर्मानुष्ठान करनेवाले कर्ता दुर्लभ हो गये हैं. सारे धार्मिक अनुष्ठान पण्डित-म्मन्य लोगोंद्वारा राजसी-तामसी प्रकृतिके म्लेच्छोंके अनुसरण और अनुकरण के रूपमें किये जा रहे हैं. और तिसपर भी धन और यश की लोलुपता ही इनका मुख्य हेतु होता है. फिर भी बुद्धिप्रेरक श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका जिन्हें आश्रय है उन्हें ऐसी क्षुद्र लालसाओंसे श्रीकृष्ण ही बचायेंगे.

५) धर्मके पांचवे आवश्यक अंग मन्त्रोंमें भी अब वह प्रभाव नहीं रह गया है. किसी योग्य अधिकारी गुरुके समक्ष प्रणिपात परिप्रश्न और परिचर्या की शास्त्रीय विधिके अनुसार तत्तद् मन्त्रोंके विभिन्न न्यास तात्पर्य और विनियोग के परिज्ञान तथा मन्त्रार्थ अपेक्षित व्रत एवम् शुद्धि के पालनपूर्वक दीक्षाग्रहण करनेसे मन्त्रोंमें प्रभाव उत्पन्न होता है. इसके विपरीत आजकल अयोग्य–अनधिकारी व्यक्तियोंसे अशास्त्रीय विधिसे न्यासादिके परिज्ञानके बिना तथा मन्त्रार्थ अपेक्षित व्रतादि शुद्धिके बिना ही मन्त्रग्रहणकी रीति चल पडी है. अतः मन्त्रकी आधिदैविक अर्थशक्ति तिरोहित होगयी है. फलतः सभी मन्त्र प्रभावहीन और निष्फल हो गये हैं. परन्तु श्रीकृष्ण तो मन्त्रशक्तिके अधीन नहीं हैं, प्रत्युत सभी मन्त्रशक्तियां श्रीकृष्णके अधीन हैं. अतः श्रीकृष्णका ही आश्रय लेना चाहिये.

६) धर्मके छठे आवश्यक अंग कर्मका भी स्वरूप भ्रष्ट हो गया हैं. क्यों कि जगत्में अनेक प्रकारके वाद चल निकले हैं. जो कर्म शास्त्रदृष्टया आवश्यक होते हैं उन्हें ये वाद निरर्थक मान लेते हैं. जो कर्म शास्त्रीय दृष्टिसे बहुत आवश्यक नहीं होते उन्हें ये वाद अनिवार्य सिद्ध करते हैं. जो वाद शास्त्रोंका प्रामाण्य मानते हैं वे भी अर्धश्रद्धासे शास्त्रोंके मनःकल्पित अर्थ निकाल लेते हैं. शास्त्रोंके इस तरहके अन्यथा व्याख्यानके कारण भ्रान्त अनुयायी शास्त्रीय कर्मोंका अनुष्ठान भी अन्यथा रीतिसे करने लग जाते हैं. जैसे अकरणसे कर्मोंका स्वरूपतः नाश होता है वैसे ही अन्यथाकरणसे कर्मोंका फलतः नाश होता है. प्रायः यथाविधि कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले भी केवल दुनियाको दिखानेके लिए कर्मानुष्ठानका पाषण्ड ही करते हैं. अतएव कर्मोंका प्रभाव ही क्षीण हो गया हैं. फिर भी अन्याश्रय-दोषरहित होकर श्रीकृष्णमें आश्रयभाव रखना कभी निष्फल नहीं जाता. अतः कृष्ण ही अब केवल आश्रयणीय रह गये हैं.

इस तरह प्रथम तीन श्लोकोंमें लोकनाश एवम् द्वितीय तीन श्लोकोंमें धर्मनाशके निरूपणके बाद, अब जैसे कि भागवतके बारहवें स्कन्धमें पञ्चविध आश्रयका निरूपण माना गया है, तदनुसार श्रीकृष्णकी आश्रयरूपताका भी पांच ही श्लोकोंमें वर्णन किया गया है. सातवें श्लोकमें कर्ममार्गीय दृष्टिकोणसे, आठवें श्लोकमें ज्ञानमार्गीय दृष्टिकोणसे, नौमें श्लोकमें भक्तिमार्गीय दृष्टिकोणसे तथा दसवें-ग्यारहवें श्लोकमें प्रपत्तिमार्गीय दृष्टिकोणसे भी एकमात्र श्रीकृष्ण ही आश्रयणीय हैं, यह दिखलाया जा रहा है.

७) कृष्ण सर्वोद्धारक हैं अतः सुसाधन निःसाधन एवम् दुष्टसाधन जीवोंका भी उद्धार करनेमें समर्थ हैं. अजामिलका उपाख्यान भागवतके छठे स्कन्धमें उपलब्ध होता है कि कैसे-कैसे निन्दित कर्मोंमें निरत होनेपर भी भगवदनुग्रहवशात् उसके सारे कर्मदोष बिना नरकयातनाके ही नष्ट हो गये. अतः कर्ममार्गीय दृष्टिसे केवल श्रीकृष्ण ही आश्रयणीय हैं, अजामिलके प्रसंगमें जैसे भगवान्ने स्वयम्के नामका माहात्म्य प्रकट किया. इसी तरह श्रीकृष्णके ध्यान अर्चन आदिका भी माहात्म्य वहां दिखलाया गया है. मूलतः कृपा ही साधन है. बाकी उद्धारका व्यापार या व्याज तो भगवान् शास्त्रतः विहित अविहित या निषिद्ध कर्मोंको भी बना सकते हैं. श्रीकृष्णका यही तो माहात्म्य है कि वे

काम भय द्वेष सम्बन्ध स्नेह या भक्ति किसी भी भावमूलक कर्मको अपने अनुग्रह-के प्रकट होनेका निमित्त बना सकते हैं. अत: "कृष्ण एव गतिर्मम."

८) ज्ञानमार्गीय दृष्टिकोणसे भी आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, इन्द्र एवप् प्रजापति; अथवा अग्निसे लेकर ब्रह्मा--विष्णु--शिव पर्यन्त तेतींस कोटी देव सभी भगवान्के अंश--कलावतार--रूप हैं तथा भगवान्की सर्वभवन --सामर्थ्यरूपा माया या प्रकृति के द्वारा लिये गये भगवद्रूप हैं. अत: वे स्वयम् आविर्भाव--तिरोभावशाली हैं. अक्षरब्रह्म यद्यापि देशत: कालत: तथा स्वरूपत: अपरिच्छिन्न एवम् पुरुषोत्तमसे अविच्छिन्नतया स्थित होता है तथापि अक्षर ब्रह्म भगवान्का ज्ञेयरूप है भजनीय रूप नहीं. अत: अक्षरब्रह्मका गणिता-नन्दकी तरह अनुभव होता है, पूर्ण पुरुषोतम श्रीकृष्णकी तरह अगणिता--नन्दके रूपमें नहीं. अत: उपासनामार्गीय देवोंकी और ज्ञानमार्गीय अक्षरब्रह्मकी तुलनामें भी उपास्यत्वेन ज्ञेयत्वेन या भजनीयत्वेन भी एकमात्र श्रीकृष्ण ही आश्रयणीय है.

९) भक्तिमार्गीय दृष्टिकोणसे भी पूर्ण विवेक धैर्य या भक्ति आदिके अभावमें भी — मन कितना भी पापासक्त क्यों न हो परन्तु दैन्यके साथ एकबार जीव शरणागत हो जाता है तो सुदुराचारीको भी साधु-पुरुष बना देनेवाली श्रीकृष्णकी भक्तिका लाभ हो ही जाता है.

(१०-११) प्रपत्तिमार्गमें तो स्वयम् प्रभुने — "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच" कहा है. अत: कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ – सर्वसमर्थ तथा भक्तोंके अखिल मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले श्रीकृष्ण यदि शरणागत जीवोंका उद्धार नहीं करेंगे तो और कौन करेगा ? अत: श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिजीवोंको आश्वस्त करना चाहते हैं कि इस कृष्णाश्रयस्तोत्रका जो श्रीकृष्णकी सन्निधिमें पाठ करेगा उस पाठकर्ताके श्रीकृष्ण आश्रय बनेंगे. जैसे अखिल ब्रह्माण्डके नाथ होनेपर भी अपने आश्रित व्रजभक्तोके लिए छोटेसे गोकुलके नाथ श्रीकृष्ण बने ही हैं !

बूला मिश्रको हम देख सकते है कि इसी कृष्णाश्रायस्तोत्रके कारण न केवल विद्वद्दुर्लभ वाक्सिद्धिकी प्राप्त हुई अपितु मानसी-सेवोपयोगी अलौकिक मन भी सिद्ध हो गया (अलौकिकमन:सिद्धौ शरणं भावयेद् हरिम्). विवेक-धैर्याश्रय ग्रन्थमें कहे गये विवेक और धैर्य सिद्ध हों या न हों पर ऐहिक-पार-लौकिक सभी विषयोंमें श्रीकृष्णका आश्रय सभीके लिए सर्वदा हितकारी ही होता है. इसी कृष्णाश्रयको दृढ करनेके लिए इस स्तोत्रकी रचना की गयी है.

"कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं य: पठेत् कृष्णसन्निधौ ।
तस्याश्रयो भवेत्कृष्ण: इति श्रीवल्लभोऽब्रवीत् ।।

प्रस्तुत संस्करण वि सं. १९८३ में प्रकाशित संस्करणका ऑफसेट प्रॉसेस द्वारा पुनर्मुद्रित रूप है. उक्त संस्करण गोस्वामिकुलभूषण श्रीरणछोड-लालजी महाराजके 'श्रीजीवनेशाचार्य पुष्टि सिद्धान्त कार्यालय'से प्रकाशित हुआ था तथा उसके सम्पादक थे श्रीहरिकृष्णजी शास्त्री. इन दोनों महा-नुभावोंका हम पुनर्मुद्रणावसरपर कृतज्ञताके साथ स्मरण करते हैं.

श्रीकृष्णाय नमः।

किञ्चित्प्रास्ताविकम् ।

कृष्णाष्टम्यां कृष्णाश्रयस्तोत्रं षड्विवरणसमेतं प्रकाशयितुं तत्प्रणेतृनिःसीमानुग्रहेण पारयामीति महत्सौभाग्यं मे । अतीयाय किल सार्धोऽब्दो मुद्रणयन्त्रमारोपितस्यास्य, किन्तु गोस्वामिश्रीरणछोडलालजीमहाराजैः साकं श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र—काशीक्षेत्र—चरणाचडेलप्रभृतिष्वनेकस्थलेषु यात्रानिमित्तं गतं मयेति, तेषां कुमारश्रीवल्लभलालजीमहोदयानां वाराणसीयप्रथमापरीक्षाऽदित्सापि तदन्तर एव जातेति तत्राप्युद्युक्तं, भूयोपि वाराणसीं प्रति प्रस्थितं तैः सह परीक्षादापनार्थम्, अन्यैश्चाप्येवंविधैर्हेतुभिरेकत्र स्थितिमलभमानेन प्रकटयितुमेतत्स्तोत्रमतिक्रान्ता वेला मया । ततश्च बहुभिर्वारंवारं पर्यन्वयोजिषि हितैषिभिः किमेतत् कुत एतद् कथमेतदित्यादि । किं पुनः प्रतिपद्यतां प्रतिवचनं, यत्रैकस्या व्यक्तेरधीनं कार्यबाहुल्यमथ च स्थितेरनैयत्यं तत्र भवत्येवैवंविधो विलम्बः । अस्तु ।

ग्रन्थोयं श्रीमदाचार्यचरणप्रणीतषोडशप्रकरणग्रन्थेषु नवमीं सङ्ख्यामावहति । विषयश्चास्य नाम्नैव स्पष्टो यत् कृष्णाश्रयणमन्तरा स्वभावदुष्टजीवानां निस्तारो नास्त्येव कलौ । 'मामेव ये प्रपद्यन्ते' 'सर्वधर्मान्परित्यज्य' 'अपि चेत्सुदुराचारः' 'मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' इत्यादिवाक्यपरसहस्रैरिदमेव दृढीक्रियते । 'कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गत'मित्याद्युक्तिभिः प्रमाणबलं प्रमेयबलमन्तराऽकिञ्चित्करमेवेत्यपि निर्विवादम्, अत एव 'कृष्णश्चेत्सेव्यते भक्त्या कलिस्तस्य फलाय ही'ति दैवोद्धारार्थगृहीतावतारैर्निबन्ध आज्ञप्तम् । यद्यपि भक्त्यादिमार्गा जनोद्धारार्थं निबन्धादौ सपरिकरं निरूपितास्तथापि प्रत्यहं कलेराधिक्येन तेषां दुःसाध्यत्वमाकलय्य आश्रयस्यैव च सर्वहितावहत्वं पर्यालोच्य स्तोत्रमिदं व्यरीरचन्नाचार्याः । आश्रयभवने तु महदनुग्रहस्यैव हेतुता नान्यस्य । अनयैव दृशा प्रणीतोयं ग्रन्थ इति प्रबन्धस्यास्यावलोकनेनावज्ञातं भविष्यति श्रीमदाचार्यपादाम्भोरुहमकरन्दलिहो दैवसर्गस्येत्यलं पल्लवितेन ।

ग्रन्थस्यास्य परिष्करणे पुस्तकप्रदानेन प्रशंसनीयमुपकारमाचरितवतां मे दीक्षागुरूणां गोस्वामिश्रीमदनिरुद्धलालजीमहाराजानां काम्यवनस्थगोस्वामिश्रीवल्लभलालजीमहाराजानां सुगृहीतं नामधेयं प्रत्यहं स्मरामि । तृतीयपीठाधीश्वरश्रीव्रजभूषणजीनामध्यापकाः पं. कण्ठमणिशर्माणः, पुरुषोत्तमलालजिमन्दिरस्थदामोदरशास्त्रिणः, सद्गतभगवदीयाः 'मूलचन्द्र तुलसीदास तेलीवाला' एतेषामपि सर्वेषां पुस्तकप्रदानतो मदुपरि महत्युपकृतिः । गोस्वामिश्रीरणछोडलालजीमहाराजा अपि सांप्रदायिक-

साहित्योद्धृतिविषये स्वपितृपादाननुकुर्वन्तीति प्रत्यक्षमेव सर्वेषाम् । एतेषां समाश्रयेणानेके साम्प्रदायिकाः प्रबन्धा बहिरवतेरुः । षोडशग्रन्थानां सेवाफलादि ग्रन्थाष्टकं नवमं कृष्णाश्रयस्तोत्रं चैतेषामेव प्रबन्धबलेन लब्धावतारं श्रीमदाचार्यवाक्सुधापिपासूनां मनोरथपूरकं भवतीति महान् प्रमोदावसरः । अपि चैतादृक्सत्प्रवृत्तौ योग्यविधित्सया परमकरुणया दशवर्षाणि मे सर्वविधसाहाय्यं दत्तवद्भ्यो गोस्वामिश्रीगोकुलनाथजिदेशिकवरेभ्यः साञ्जलि कार्तज्ञ्यमावेदयामि ।

अस्मिन् संशोधने दृष्टिदोषतो मुद्राक्षरयोजकप्रमादतो वा जातानि स्खलितानि संशोध्य तास्ता अशुद्धीर्बोधयित्वानुगृह्णन्तु दयालवो विद्वांसो मामिति प्रार्थयति—

कृष्णाष्टमी
संवत् १९८३

विद्वज्जनकृपाभिलाषि—
हरिकृष्णः शास्त्री,
'शुद्धाद्वैतविशारदः'।

अष्टमपत्रे चरमपङ्क्तितोऽवशिष्टम् ।

उच्यते । सा च स्नेहरूपा । तदुक्तं निबन्धे 'माहात्म्यज्ञाने' त्यस्य व्याख्याने 'रतिः स्नेह' इति । स्नेहस्तु प्रेमैव । न च शाब्दिकोक्तभावार्थविरोधादसङ्गतमिव प्रतिभातीति वाच्यं, निरुक्तेरपि प्रमाणत्वात् । इतरथा 'कृषेर्वर्णे' इत्यनुशासनसिद्धस्य कृष्णशब्दस्यानन्दवाचकत्वं गगनकुसुमायमानं स्यादिति भक्तिसरणिकुशलतमाः परिशीलयन्तु । अधुना देशादिसाधनानामसाधकत्वमिति । अधुना कलावित्यर्थः । आदिपदात् कालद्रव्यमन्त्रकर्तृकर्मणां ग्रहणमितरत्स्पष्टम् । उक्तं च तत्त्वार्थदीपे 'षड्भिः संपद्यते धर्मस्ते दुर्लभतराः कलावि'ति । सर्वसाधनरूप इति, षड्विधसाधनरूप इत्यर्थः । सङ्ख्यातात्पर्यानुरोधेन सर्वपदस्यात्र सङ्कुचितवृत्तित्वात् । दशलीलेति । 'अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः । मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रय' इत्येता दशलीला इत्यर्थः । सर्वमेतच्च द्वितीयस्कन्धसुबोधिन्यामस्मदार्यैर्विवेचितं विस्तरभयाल्लक्ष्यमात्रमेवोच्यते न कृत्स्नम् । तत्र तावदशरीरस्य विष्णोः पुरुषशरीरस्वीकारः